P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-1) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में उल्लिखित राज्य का सप्तांग सिद्धान्त : एक परिचय

राजीव कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान विभाग,
आर0एस0एस0 (पी0जी0) कॉलेज,
पिलखुवा, यू0 पी0
भारत

सारांश

यद्यपि उत्तर वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में विविध यज्ञों और विविध विधानों की सैद्धान्तिक व्याख्या की गई है, तथापि हमें न तो वैदिक साहित्य में, और न प्रारंभिक विधि ग्रन्थों अर्थात् धर्मसूत्रों में ही राज्य की कोई परिभाषा मिलती है। कारण यह है कि तब तक राज्य की संस्था ठोस रूप से स्थापित नहीं हो पाई थी। बुद्ध के युग में कोशल और मगध जैसे सुसंगठित राज्यों के उत्थान के बाद सबसे पहले कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इसे सात अंगों से युक्त संस्था बतलाया गया। यह परिभाषा बाद के ग्रंथों के लिए सूत्ररूप बन गई। ईसा की सोलहवीं शताब्दी[1] में 'सरस्वतीविलास' नामक ग्रंथ के रचनाकार ने गौतम धर्मसूत्र को उद्धृत करते हुए इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय गौतम को दिया है।[2] किन्तु प्रो0 रामशरण शर्मा के अनुसार वस्तुतः इसका मूल इस ग्रन्थ में नहीं ढूंढा जा सकता। इस ग्रंथ में काफी हेर–फेर किया गया प्रतीत होता है, और इसलिए लगता है, यह एक परवर्ती संकलन है। यद्यपि कुछ प्रारंभिक धर्मसूत्रों में भी 'राजा', 'अमात्य', 'विषय' आदि कतिपय अंगों का उल्लेख मिलता है, लेकिन हमें राज्य की पूर्ण परिभाषा सबसे पहले कौटिल्य से ही प्राप्त होती है।[3]

मुख्य शब्द : वैराज्य ,स्वामी ,अमात्य ,जनपद ,दुर्ग ,कोष, दंड ,मित्र।

प्रस्तावना

कौटिल्य ने जिन सात अंगों का उल्लेख किया हैः वे हैं, स्वामी, 'अमात्य', 'जनपद', 'दुर्ग', 'कोष', 'दंड' और 'मित्र' है।[4] 'अर्थशास्त्र' में जहाँ पर सभी अंगों का विवेचन किया गया है, वहाँ दो अंगों, अमात्य और दुर्ग, की परिभाषा नहीं दी गई है। इन दो का विवेचन पृथक रूप से किया गया है। किन्तु कुल मिलाकर इसमें सप्तांग का विवेचन सांगोपांग और क्रमबद्ध है जो अन्यत्र दुर्लभ है। परवर्ती ग्रंथों में इन अंगों के पारस्परिक संबंधों के बारे में 'अर्थशास्त्र' से कुछ भिन्न बातें कहीं गई हैं, लेकिन कौटिल्य की परिभाषा में उन्होंने कोई महत्व का परिवर्तन नहीं किया है। अतः सप्तांग के विश्लेषण के लिए हमें कौटिल्य की परिभाषा पर निर्भर रहना है।

उद्देश्य एवं अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत लेख का प्रमुख उद्देश्य कौटिल्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य के सप्तांग सिद्धांत को निरूपित करना है जिससे कि यह स्पष्ट हो जाये की प्राचीन भारत में राज्य के विषय में सुव्यवस्थित एवं सुसंगत चिंतन विद्यमान था। प्रस्तुत लेख में ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति एवं द्वितीयक श्रोतो का अवलम्बन किया गया है।

स्वामी का अर्थ है प्रधान या अधिपति। इसका उल्लेख सभी स्रोत ग्रंथों में इसी रूप में हुआ है।[5] संभवतः राजतंत्र और गणतन्त्र, दोनों के प्रधान को राजा की संज्ञा दी गई है, क्योंकि कौटिल्य 'राजा' पर आने वाली विपत्तियों पर विचार करते समय 'वैराज्य', अर्थात् राजारहित राज्य, की कमजोरियों का भी उल्लेख करता है।[6] जहाँ तक पुरालेखों का संबंध है, 'स्वामी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शक अभिलेखों में हुआ है। ध्यान देने की बात है कि सप्तांग सिद्धान्त के प्रतिपादन के परिवेश में राज्य के प्रधान के लिए किसी भी ग्रंथ में राजा शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, इसके बजाय स्वामी शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है अधिपति। चूंकि इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कौटिल्य ने किया है, इसलिए इसका सही अर्थ अर्थशास्त्र में व्यक्त किए गए अन्य विचारों के संदर्भ में अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस शब्द के प्रयासों के द्वारा राज्य के प्रधान के आधिपत्य पर जोर दिया गया है क्योंकि कौटिल्य द्वारा वर्णित व्यवस्था में राज्य प्रधान को अत्यंत उच्च स्थिति प्रदान की गई है। अर्थशास्त्र में स्वाम्युचित

गुणों का किंचित विस्तार से विवेचन किया गया है। उसके मतानुसार स्वामी को आभिजात्य, प्रज्ञा, उत्साह तथा वैयक्तिक गुणों से संपन्न होना चाहिए। आभिजात्य से उत्पन्न होने वाले गुण पर जोर देने की यह बात सामान्य कुलों में उत्पन्न व्यक्तियों के राजपद पाने की कोई संभावना नहीं छोडती।

दूसरा अंग है 'अमात्य', इसका उल्लेख इस ग्रन्थों में इसी रूप में हुआ है। यहाँ यदि अमात्य के सामान्य पर्याय मंत्री शब्द का प्रयोग करें तो उससे यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि अमात्य मंत्री के रूप में काम करने के लिए रखे जाते थे। मंत्रियों की संख्या थोड़ी होती थी जबकि 'शांतिपर्व' जैसी परवर्ती रचनाओं में भी अमात्यों की संख्या सैंतीस बताई गई है। वे मंत्रियों से, जिनकी संख्या आठ[7] विहित की गई है, भिन्न बताए गए है। 'अर्थशास्त्र' में अमात्य एक स्थायी सेवा–संवर्ग के सदस्य हैं। इसी संवर्ग से प्रधान पुरोहित, मंत्री, समाहर्ता, कोषपाल, दीवानी और फौजदारी मामलों की देख–रेख के लिए जिम्मेदार अधिकारी, अंत:पुर का प्रबंध करने वाले अधिकारी, दूत, विभिन्न विभागों के अधीक्षक आदि उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

अमात्य परिषद पर विचार करते समय भी कौटिल्य मंत्रियों और अमात्यों के अंतर का ध्यान रखता है। यह मंत्रियों की संख्या तीन या चार तक सीमित रखता है, लेकिन अमात्यों के संबंध में कहता है कि इनकी संख्या इनके नियोक्त की क्षमता पर निर्भर होनी चाहिए। अमात्यों के लिए अपेक्षित योग्यता बताते हुए उसका कहना है कि देश, काल और कार्य की आवश्यकताओं को देखकर किसी को भी अमात्य नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन यह बात मंत्रियों के साथ नहीं लागू की जा सकती। यहाँ वह सात विचारकों के मतों को उद्धृत करता है, जिनमें से दो आनुवंशिकता और आभिजात्य पर आधारित पात्रता को अधिक महत्व देते हैं।[8]

तीसरा अंग 'जनपद' है। इसका शाब्दिक अर्थ जनजातीय बस्ती है। दो मौर्योत्तर ग्रंथों कोणयदंत और बाहुदंतिपुत्र में इसका उल्लेख 'राष्ट्र' के रूप में और एक गुप्तकालीन विधिग्रंथ में मात्र जन के रूप में हुआ है। राष्ट्र शब्द स्पष्टतया भूभाग का बोधक है, जबकि जनशब्द नि:संदेह जनसंख्या का बोधक है। 'अर्थशास्त्र' में परिभाषित जनपद शब्द से यह संकेत मिलता है कि इसमें भूभाग और जनसंख्या दोनों का समावेश है। उसमें कहा गया है कि भूभाग में अच्छी जलवायु, पशुओं के लिए चरागाह और कम मेहनत से उपज देने वाली भूमि होनी चाहिए। इसमें ऐसे परिश्रमीं कृषकों का निवास होना चाहिए जो कर और दंड का बोझ वहन करने की क्षमता रखते हो। इसमें बुद्धिमान मालिक होने चाहिए और निम्न वर्णों के लोगों की बहुलता रहनी चाहिए, तथा इसकी प्रजा स्वामिभक्त एवं निष्ठावान होनी चाहिए।[9] कामंदक इस कथन को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भूभाग में शूद्रों, कारीगरों, व्यापारियों तथा परिश्रमी और उद्यमी कृषकों का निवास होना चाहिए। गुप्तकालीन दो पुराणों में कहा गया है कि राजा को ऐसे देश में रहना चाहिए जिसमें ज्यादातर वैश्य और शूद्र, थोडे से ब्राह्मण और अधिक संख्या में भाड़े के श्रमिक हों। इस प्रकार जिन स्रोतों से जनसंख्या के स्वरूप का पता चलता है उन सबमें इस बात पर जोर दिया गया है कि उसमें उत्पादकों की संख्या प्रमुख होनी चाहिए। सामान्यतः इनमें भूभाग का आकार या जनसंख्या निर्धारित नहीं की गई है, यद्यपि उस भूभाग को बसाने के संबंध में कौटिल्य का कहना है कि ग्राम में एक सौ से पांच सौ तक परिवार होने चाहिए, और स्थानीय में, जो 'जनपद' की सबसे बड़ी इकाई है, आठ सौ ग्राम होने चाहिए।[10]

कौटिल्य द्वारा उल्लिखित चौथा अंग 'दुर्ग' है, जिसे मनु ने 'पुर' कहकर तीसरा स्थान दिया है। दुर्ग से किले का बोध होता है। लेकिन 'पुर' के पर्याप्त के रूप में 'दुर्ग' को किलाबंद राजधानी का बोधक मानना चाहिए, और यही अर्थ कौटिल्य के 'दुर्गविधान' और 'दुर्गनिवेश' नामक दो पृथक प्रकरणों से भी निकाला जा सकता है। 'दुर्गविधान' में किले के निर्माण का वर्णन है और 'दुर्गनिवेश' में 'जनपद' और 'पुर' का भेद किया गया मालूम होता है। जनपद से देहात का और पुर से राजधानी का बोध होता है। अन्य अंगों की विशेषताओं की चर्चा करते हुए कौटिल्य ने दुर्ग का भी उल्लेख किया है, जिसकी विशेषताओं पर उन्होंने 'दुर्गनिवेश' प्रकरण में प्रकाश डाला है। राजधानी केन्द्रीय स्थान पर बनाई जानी चाहिए। इसकी योजना बनाने में विभिन्न वर्णों के लोगों, कारीगरों और देवताओं के लिए अलग–अलग क्षेत्र छोड़े जाने चाहिए। यह ध्यातव्य है कि इस संबंध में ऊन, धागा, बांस, कच्चे चमड़े, हथियार आदि का काम करने वाले कारीगरों, धातुकर्मियों और रत्नकर्मियों तथा विभिन्न प्रकार के शिल्पियों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इस प्रकार शिल्पिवर्ग को शायद महत्वपूर्ण समझा गया है कि वह प्रतिरक्षा की दृष्टि से विशेष उपयोगी था।[11]

कोष या खजाना कौटिल्य के ग्रंथ और अन्य स्रोतों में भी पांचवें अंग के रूप में आया है। कौटिल्य के अनुसार राजा को नेक और वैध उपायों से संचित कोष रखना चाहिए, या उसे इन्हीं उपायों से समृद्ध बनाना चाहिए। सोने–चांदी और रत्नादि से भरे–पूरे कोष को ऐसा समृद्ध होना चाहिए कि अकाल आदि विपत्तियों के समय वह खर्च का भार वहन कर सके। कौटिल्य का कहना है कि कोष के अभाव में सेना रखना और उसकी निष्ठा का भी पात्र बने रहना संभव नहीं। यह राज्य के दो अंगों के महत्वपूर्ण पारस्परिक संबंध की स्पष्ट स्वीकृति है, यद्यपि उसका यह व्यापकतर कथन भी हमें देखने को मिलता है कि समस्त प्रवृत्तियाँ वित्त पर भी आश्रित हैं।[12]

दंड का अर्थात् मुख्यतया सेना के रूप में सलभ बल के प्रयोग की शक्ति का उल्लेख छठे अंग के रूप में हुआ है, और कभी–कभी दंड और कोष को समकक्ष माना गया है। कौटिल्य के अनुसार इस अंग में पुश्तैनी, भाड़े पर रखे गए वन और निगम के सैनिक आते हैं, जो पदाति (पैदल), रथारोही, हस्तिसैनिक और अश्वारोही इन चार भागों में बंटे होते हैं। कौटिल्य ने अनेक स्थलों पर दंड की विशेषता का उल्लेख किया है। क्षत्रियों को सेना के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है। यह बात सभी ब्राह्मणवादी और बौद्ध ग्रंथों में उन्हें सौंपे गए युद्धकर्म के अनुरूप ही है। आपातिक (संकटकालीन) स्थितियों में मनु ने ब्राह्मणों और वैश्यों को भी शस्त्र धारण करने की

अनुज्ञा दी है, लेकिन शूद्रों को नहीं। किन्तु, कौटिल्य वैश्यों और शूद्रों के संख्या–बल का विचार करते हुए उन्हें सेना में भर्ती करने की सिफारिश करता है। इसके अलावा, उनके मतानुसार, सेना वंशानुगत और निष्ठावान होनी चाहिए। उनके बाल–बच्चों और पत्नियों के भरण–पोषण के लिए इतना दिया जाना चाहिए जिससे वे संतुष्ट रहें। आक्रमण के समय सेना को सभी आवश्यक उपादानों से सज्जित होना चाहिए। उसे अपराजेय, धैर्यशाली, कार्यकुशल, हार–जीत के प्रति तटस्थ और राजा की इच्छानुसार कार्य करने वाली होना चाहिए।[13]

कौटिल्य द्वारा उल्लिखित सातवां और अंतिम अंग 'मित्र' है, जो अनेक अन्य ग्रंथों में सुहृद के रूप में भी अभिहित किया गया है। उसके अनुसार मित्र बनावटी नहीं, वंशानुगत होना चाहिए, जिसके साथ विभेद की गुंजाइश ही न हो, और जो अवसर आने पर सहायता के लिए तैयार रहे। इसके विपरीत शत्रु की परिभाषा लोभी, अन्यायी स्वेच्छाचारी और दुष्ट व्यक्ति के रूप में की गई है।[14]

जितना सही यह कथन है कि राज्य का संविदा सिद्धांत (कॉट्रैक्ट थीअरी) बौद्ध विचारधारा की देन है उससे कहीं अधिक उपयुक्त यह कहना होगा, कि राज्य का उपर्युक्त सप्तांग सिद्धान्त विशुद्ध रूप से ब्राह्मण विचारधारा की उपज है क्योंकि बौद्ध विचारधारा में सप्तांग सिद्धान्त का उल्लेख कहीं नहीं है। यहाँ हम एक बौद्ध स्रोत को, जिसे मौर्यकालीन बताया जाता है, उद्धृत कर सकते हैं, 'मनुष्यों में जो कोई भी ग्राम से या भूमि से अपना लगान प्राप्त करता है उसके बारे में हे वांसेठ्ठ, यह जानों कि वह ब्राह्मण नहीं, राजा है।' इस कथन से राजा के लिए कोष का महत्व तो परिलक्षित होता है किन्तु इसमें अन्य पांच अंगों का उल्लेख नहीं है। स्पष्ट है कि कौटिल्य विरचित 'अर्थशास्त्र' में राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।

निष्कर्ष

जितना सही यह कथन है कि राज्य का संविदा सिद्धांत (कॉट्रैक्ट थीअरी) बौद्ध विचारधारा की देन है उससे कहीं अधिक उपयुक्त यह कहना होगा, कि राज्य का उपर्युक्त सप्तांग सिद्धान्त विशुद्ध रूप से ब्राह्मण विचारधारा की उपज है क्योंकि बौद्ध विचारधारा में सप्तांग सिद्धान्त का उल्लेख कहीं नहीं है। यहाँ हम एक बौद्ध स्रोत को, जिसे मौर्यकालीन बताया जाता है, उद्धृत कर सकते हैं, 'मनुष्यों में जो कोई भी ग्राम से या भूमि से अपना लगान प्राप्त करता है उसके बारे में हे वांसेठ्ठ, यह जानों कि वह ब्राह्मण नहीं, राजा है।' इस कथन से राजा के लिए कोष का महत्व तो परिलक्षित होता है किन्तु इसमें अन्य पांच अंगों का उल्लेख नहीं है। स्पष्ट है कि कौटिल्य विरचित 'अर्थशास्त्र' में राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।

पाद टिप्पणी

काणे, पी0वी0 हिन्दी ऑफ धर्मशास्त्र, i, 413
वही, iii, पा0टि0 20
शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ0 47, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
अर्थशास्त्र, VI, 1
अर्थशास्त्र, प. VI.-I
अर्थशास्त्र, प. VI.-2
अर्थशास्त्र, प. VI-I
अर्थशास्त्र, I. 8
जातक, ii, 2. 181; III, 105; V. 228
शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ0 50
वही, पृ0 50–51
वही, पृ0 51
वही, पृ0 51–52
वही, पृ0 52